नियमसार, २२६ कलश है।

ये मर्त्य-दैव-निकुरम्ब-परोक्ष-भक्ति-
योग्याः सदा शिवमयाः प्रवराः प्रसिद्धाः।
सिद्धाः सुसिद्धि-रमणी-रमणीय-वक्त्र-
पङ्केरुहोरु-मकरन्द-मधु-व्रताः स्युः ।।२२६।।

सिद्धों की स्तुति का वर्णन है।

श्लोकार्थ : जो मनुष्यों के तथा देवों के... आहाहा! **समूह की परोक्ष भक्ति के योग्य हैं,...** तिर्यंच और नारकी नहीं लिये। **मनुष्यों के तथा देवों के समूह की परोक्ष भक्ति के योग्य हैं,...** परोक्ष है न? पर है, इसलिए। **जो सदा शिवमय हैं,...** सिद्ध भगवान सदा शिवमय है। **जो श्रेष्ठ हैं तथा जो प्रसिद्ध हैं,...** आहा..! सिद्ध-प्रसिद्ध। सिद्ध तो प्रसिद्ध हैं, कहते हैं। आहाहा! **वे सिद्धभगवन्त सुसिद्धिरूपी रमणी के रमणीय मुखकमल के महा मकरन्द के भ्रमर हैं...** फूल का जो रस होता है, मधु, वह रस भँवरे लेते हैं। जैसे फूल का रस भँवरे लेते हैं; वैसे इस आनन्द का रस लेनेवाले हैं। आहाहा! आत्मा की परिणति का आनन्द, उसके भँवरे हैं। उस आनन्द की रमणता की रमणीयता में रमते हैं। आहाहा! **(अर्थात्) अनुपम मुक्तिसुख का निरन्तर अनुभव करते हैं।** इसका नाम सिद्ध है। आहाहा!

---

* *मकरन्द=फूल का पराग, फूल का रस, फूल का केसर।*

गाथा-१३६

मोक्खपहे अप्पाणं ठविऊण य कुणदि णिव्वुदी भत्ती।
तेण दु जीवो पावइ असहाय-गुणं णियप्पाणं।।१३६।।

मोक्षपथे आत्मानं सन्स्थाप्य च करोति निर्वृत्तेर्भक्तिम्।
तेन तु जीवः प्राप्नोत्यसहाय-गुणं निजात्मानम्।।१३६।।

निजपरमात्मभक्तिस्वरूपाख्यानमेतत्। भेदकल्पनानिरपेक्षनिरुपचाररत्नत्रयात्मके निरुपरागमोक्षमार्गे निरञ्जननिजपरमात्मानन्दपीयूषपानाभिमुखो जीवः स्वात्मानं सन्स्थाप्यापि च करोति निर्वृत्तेर्मुक्त्यङ्गनायाः चरणनलिने परमां भक्तिं, तेन कारणेन स भव्यो भक्तिगुणेन निरावरणसहजज्ञानगुणत्वादसहायगुणात्मकं निजात्मानं प्राप्नोति।

रे! जोड़ निज को मुक्ति पथ में भक्ति निर्वृति की करे।
अतएव वह असहाय-गुण-सम्पन्न निज आत्मा वरे॥१३६॥

अन्वयार्थ : [मोक्षपथे] मोक्षमार्ग में [आत्मानं] (अपने) आत्मा को [संस्थाप्य च] सम्यक् प्रकार से स्थापित करके [निवृत्तेः] निर्वृत्ति की (निर्वाण की) [भक्तिम्] भक्ति [करोति] करता है, [तेन तु] उससे [जीवः] जीव [असहायगुणं] [१]असहायगुणवाले [निजात्मानम्] निज आत्मा को [प्राप्नोति] प्राप्त करता है।

टीका : यह, निज परमात्मा की भक्ति के स्वरूप का कथन है।

निरंजन निज परमात्मा का आनन्दामृत पान करने में अभिमुख जीव भेद-कल्पनानिरपेक्ष निरुपचार-रत्नत्रयात्मक [२]निरुपराग मोक्षमार्ग में अपने आत्मा को सम्यक्

१- असहायगुणवाला=जिसे किसी की सहायता नहीं है, ऐसे गुणवाला। [आत्मा स्वतःसिद्ध सहज स्वतन्त्र गुणवाला होने से असहायगुणवाला है।]

२- निरुपराग=उपरागरहित; निर्विकार; निर्मल; शुद्ध।

प्रकार से स्थापित करके निर्वृत्ति के—मुक्तिरूपी स्त्री के—चरणकमल की परम भक्ति करता है, उस कारण से वह भव्य जीव भक्तिगुण द्वारा निज आत्मा को—कि जो निरावरण सहज ज्ञानगुणवाला होने से असहायगुणात्मक है उसे—प्राप्त करता है।

गाथा - १३६ पर प्रवचन

अब, १३६ गाथा। वह सिद्धभक्ति परोक्ष है और पुण्य का कारण है, शुभभाव है; धर्म नहीं, मोक्ष का कारण नहीं।

मोक्खपहे अप्पाणं ठविऊण य कुणदि णिव्वुदी भत्ती।
तेण दु जीवो पावइ असहाय-गुणं णियप्पाणं।।१३६।।

रे! जोडु निज को मुक्ति पथ में भक्ति निर्वृति की करे।
अतएव वह असहाय-गुण-सम्पन्न निज आत्मा वरे॥१३६॥

टीका : यह, निज परमात्मा की भक्ति के स्वरूप का कथन है। पहले थी, वह सिद्धभगवान की स्तुति का था। यह निज स्वरूप की भक्ति। आहाहा! आत्मा में क्या भरा है? और आत्मा कितने गुण-सम्पन्न है?—उसका इसे माहात्म्य-महिमा अनन्त काल में आयी नहीं, उसकी महिमा ही नहीं आयी। दूसरी चीज़ की महिमा के समक्ष इसकी महिमा इसे नहीं सूझती। आहाहा! इस निज परमातमा की भक्ति अब महिमा से आती है। स्वयं महाप्रभु अन्दर है। सच्चिदानन्दस्वरूप है। अनन्त-अनन्त गुण रत्नों से भरपूर भगवान है। उसकी भक्ति के स्वरूप का कथन है। अपने स्वरूप की भक्ति का कथन है। आहाहा!

निरंजन निज परमात्मा का... स्वयं निरंजन निज परमात्मा अन्दर है। वह राग और पुण्य-पाप के विकल्प से रहित आत्मा है। जिसे आत्मा कहते हैं, वह तो निरंजन निज परमात्मा है। उसे तो अंजन-मैल भी नहीं। त्रिकाल निरावरण भगवान अन्दर है। आहाहा! ऐसे **निरंजन निज परमात्मा का आनन्दामृत पान करने में...** यह भक्ति, निज भक्ति। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द है। वह अतीन्द्रिय आननद को अनुभव करे और पीवे, इसका नाम नाम भक्ति। आहाहा! दुःख का अनुभव करता है। और पर की भक्ति भी अभी दुःख है। सिद्ध की भक्ति भी राग है, इसलिए दुःख है। आहाहा!

निरंजन निज परमात्मा का... जिसे कोई अंजन या मैल नहीं है, ऐसा जो निरंजन निज परमात्मा। निज आत्मा नहीं कहा, निज परमात्मा कहा। आहाहा! निज आत्मा-ऐसा भी नहीं। परमात्मा परम स्वरूप है। उसका त्रिकाली परमात्मस्वरूप है, वह शक्ति से, स्वभाव से परमात्मा है। आहाहा! उसका **आनन्दामृत पान करने में अभिमुख...** आहाहा! ऐसा जो भगवान परमात्मा स्वयं, उसका आनन्द का अमृत पीने में अभिमुख-सन्मुख। आहाहा! यह निज भक्ति। आत्मा-आत्मा करे और आत्मा-आत्मा धारे, यह बात नहीं। आहाहा!

निरंजन निज परमात्मा का आनन्दामृत पान करने में... आहाहा! आनन्दरूपी अमृत पीनेवाले **अभिमुख जीव...** चैतन्य परमात्मा के सन्मुख **भेदकल्पनानिरपेक्ष...** आहाहा! यह आत्मा गुणी है और ज्ञान, गुण है—ऐसी भेदकल्पना भी जहाँ नहीं है। आहाहा! जहाँ राग तो नहीं, दया-दान-व्रत का विकल्प तो नहीं, परन्तु भेद नहीं। यहाँ भेद नहीं, अभी। आहाहा! भेद की कल्पना से निरपेक्ष। आहाहा! भगवान अन्दर परमात्मा, निज परमात्मा निरंजन, भेदकल्पना से निरपेक्ष है।

निरुपचार-रत्नत्रयात्मक... आहाहा! और व्यवहार तथा निश्चय रत्नत्रयस्वरूप। निरुपचार अर्थात् निश्चय। आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप है। उसकी अन्दर की श्रद्धा में अनुभव का पान, उसके ज्ञान में आनन्द का पान और उसमें रमणता (होना), वह निरुपचार रत्नत्रयस्वरूप है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उस निश्चयरत्नत्रयस्वरूप भगवान है। आहाहा! अभी बाहर से निवृत्त होता नहीं और धर्म के नाम से आवे तो व्यवहार के क्रियाकाण्ड में लवलीन। सवेरे पूजा करना, भक्ति करना, शाम को आरती उतारना। आहाहा! परन्तु यह भगवान सदा निरंजन निराकार (विराजमान है), उसका जो निरुपचार-रत्नत्रयात्मक... आहाहा! उपचार अर्थात् व्यवहार का भी जिसमें अभाव है। ऐसा निरुपचार रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय... आहाहा!

निरुपराग... उपरागरहित, निर्विकार। जिसमें राग नहीं, विकल्प भी नहीं। जिसमें प्रभु की भक्ति का राग भी नहीं। पंच परमेष्ठी की भक्ति और पंच परमेष्ठी का स्मरण, ऐसा जो राग, उस राग से रहित है। आहाहा! यह आत्मा की बात चलती है, भगवान की नहीं। निज परमात्मा अन्दर कौन है? आहाहा! यह निरुपचार अर्थात् उपचाररहित जिसको

रत्नत्रय है। आहाहा! अर्थात् निश्चयरत्नत्रय है। अर्थात् निश्चय आत्मा का आनन्द, उसे अनुभव करते हैं, उसकी श्रद्धा है, उसमें रमणता है, उसका ज्ञान है। आहाहा! उसे निज भक्ति कहा जाता है। आहाहा! ऐसा कठिन पड़ता है। उन सिद्धभगवान को.. णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... जाओ, पंच परमेष्ठी अनुपूर्वी गिने, हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं है। आहाहा! भाई! धर्म कोई अलग चीज़ है। एक सैकेण्ड भी अनन्त काल के परिभ्रमण के भव में, अनन्त भव में एक सैकेण्डमात्र भी चैतन्य को देखा नहीं। देखनेवाले ने देखा है दूसरा, परन्तु देखनेवाले ने स्वयं को नहीं देखा। आहाहा! देखनेवाला तो भगवान आत्मा चैतन्य ही है। वह देखनेवाला दूसरे को देखने में अटका है, परन्तु स्वयं को देखने में नहीं आया। आहाहा! दूसरे को जानना, वह तो व्यवहार। सवेरे आया था। दूसरे को जानना, वह तो व्यवहार है। अपने को अन्तर में जानना। ज्ञान और आनन्द का अनुभव (होना)। आहाहा!

निरुपराग मोक्षमार्ग में... रागरहित, वह मोक्षमार्ग। जिसमें विकल्प का भी अभाव है। आहाहा! यह निज भक्ति, यह मुक्ति का कारण। आहाहा! **निरुपराग मोक्षमार्ग...** इसके विशेषण इतने दिये हैं। देखा? निरपेक्ष, निरुपचार, रत्नत्रयात्मक निरुपराग - ऐसा मोक्षमार्ग। आहाहा! मोक्षमार्ग तो उसे कहते हैं कि जिसमें निश्चय स्व आवे। पर का जिसमें अभाव और जिसमें उपचार तथा व्यवहार नहीं। निश्चयरत्नत्रय स्व-आश्रय। चैतन्य की-आत्मा की ऋद्धि है, उस ऋद्धि को अनुभव करना, आनन्द का अनुभव करना, उसकी श्रद्धा करके—ज्ञान करके, रमणता करना, वह निज भक्ति मुक्ति का कारण है। भगवान की भक्ति भी राग और व्यवहार है। आहाहा!

ऐसे **मोक्षमार्ग में अपने आत्मा को...** आहाहा! अपने आत्मा को; पर आत्मा वीतराग पंच परमेष्ठी नहीं। **अपने आत्मा को सम्यक् प्रकार से स्थापित करके...** स्वरूप में बराबर दृष्टि में लेकर सम्यक् प्रकार से श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता अन्दर स्वरूप में स्थापित करके, **निर्वृत्ति के—मुक्तिरूपी स्त्री के—**आहाहा! अन्दर स्थापित करता है, जब आनन्द में रहता है, तब वह निवृत्ति की अर्थात् मुक्तिरूपी स्त्री के **चरणकमल की परम भक्ति करता है,...** आहाहा! मुक्तिरूपी स्त्री; मुक्ति तो पूर्ण दशा है। उसके चरणकमल की अर्थात् साधक। आहाहा! नीचे साधकरूप से निश्चयरत्नत्रय की भक्ति करता है, वह

परम भक्ति करता है,... आहाहा! इसे मोक्षमार्ग कहते हैं, इसे निज भक्ति कहते हैं। बाकी सब.. साधन, व्यवहार.. व्यवहार... व्यवहार... आहाहा! व्यवहार के कारण निवृत्त नहीं। यह तो व्यवहार-धन्धे में निवृत्त नहीं, परन्तु इस धर्म के नाम से व्यवहार (करे)... आहाहा! उससे भी निवृत्त नहीं होता।

यहाँ तो आत्मा के निजस्वरूप की परम भक्ति। भक्ति अर्थात् उसका अनुभव करे। आहाहा! परमानन्द के नाथ का-आनन्द का अनुभव करे, उसका नाम निजभक्ति कहा जाता है और वह मुक्ति का कारण तथा मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! अब यह सब मन्दिर और यह क्या सब? २६-२६ लाख का मकान (मन्दिर)। यह तो होनेवाला हो, उस काल में होता है। करने के भाववाले को शुभभाव हो, पुण्य हो, पुण्य; धर्म नहीं है। आहाहा! यह २६ लाख क्या, २६ करोड़ खर्च करे और मन्दिर बनावे, वह तो उसके समय में होना ही है। उस जड़ की पर्याय का वह काल है। उस प्रकार से मन्दिर और मूर्ति वहाँ होनी ही है। वह दूसरे के करने से नहीं हुई है। आहाहा! उसमें करनेवाले का भाव होवे तो राग की मन्दता का शुभभाव-पुण्य हो। करोड़ों रुपये खर्च करे तो (भी) पुण्य है, धर्म नहीं। आहाहा!

यहाँ कहा न, देखो न! अफ्रीका में साठ लाख रुपये एकत्रित किये, परन्तु कहा - साठ लाख क्या, साठ करोड़ इकट्ठे करे और मन्दिर को हीरा-माणेक जड़ावे तो भी वह पुण्य है; धर्म नहीं। आहाहा! वह पोप है, नहीं? ख्रिस्ती का गुरु। उसके पास पाँच करोड़ की एक मोटर है। पाँच करोड़ की मोटर। शान्तिभाई! यह तो पहले-पहले सुना। क्योंकि वह भाई पूनमचन्द का लड़का। अपने चन्दुभाई के... मुम्बई। वह भाई दूसरे देश में रहता है, वहाँ से बीस लाख की मोटर लाया था। बीस लाख की। इसलिए वहाँ गाँव में से ऐसे... तो उसमें बैठे। कहा - कितने की है? तो कहे - बीस लाख की। वहाँ और दूसरे भाई ने कहा - हमारे स्वीट्जरलैण्ड में पचास लाख की मोटर है; तो तीसरे ने कहा - पोप को पाँच करोड़ की मोटर है। आहाहा! वह पाँच करोड़ की मोटर, इसलिए मानो हो गया बड़ा गुरु। आहाहा! मिथ्यादृष्टि है। अरे! आत्मा आनन्द का नाथ, अकेला साक्षी है। करना तो है नहीं, परन्तु पर को जानना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! क्योंकि पर में मिलता नहीं और भिन्न रहकर अपने ज्ञान में रहकर स्व-पर का ज्ञान अपने से अपने में करता है। आहाहा! ऐसा जो भगवान, ऐसे आत्मा की परम भक्ति। चरणकमल की। देखा न?

मुक्तिरूपी स्त्री के—चरणकमल... मोक्षरूपी स्त्री का साधन, वह उपाय। मोक्षमार्ग, वह उपाय है, वह चरणकमल की सेवा है। आहाहा! मोक्षरूपी स्त्री के चरणकमल की सेवा। यह साधक स्वभाव, निश्चयरत्नत्रय, वह चरणकमल की सेवा है। आहाहा! यह तो जहाँ हो, वहाँ सर्वत्र बाहर में फूंक में हो बड़ा करके। भाषण-बासण करता हो, इसका ऐसा किया, इसने ऐसा किया। आहाहा! सेवायें की, इसे कुछ दो, पदवी दो। किसकी सेवा? धूल की? पर की सेवा कौन कर सकता है? पर की सेवा करता हूँ—यह मान्यता ही मिथ्या भ्रम है। आहाहा!

यहाँ तो सिद्धभगवान की भक्ति भी राग है। आहाहा! स्वयं ही निर्मलानन्द पूर्ण मोक्ष की पर्याय जो है, उसका यह साधन है। इसलिए वह मुक्तिरूपी स्त्री, उसके चरणकमल, आहाहा! अर्थात् उसके पैर दबाता है। अभी ऊपर जाना है न! मोक्षमार्ग करे और फिर जाना है मोक्ष। आहाहा! परमभक्ति करता है। **उस कारण से वह भव्य जीव...** इस कारण से वह भव्य जीव, **भक्तिगुण द्वारा...** ऐसी निर्मल भक्ति, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वादरूपी भक्ति द्वारा। आहाहा! अतीन्द्रिय पूर्णानन्द वह जो मुक्ति, वह मुक्तिरूपी जो स्त्री, उसका जो साधन, वह उसके चरणकमल की सेवा है। आहाहा!

परमानन्द का नाथ प्रभु आनाकुल शान्ति का सागर, उसका वेदन और अनुभवन, वीतरागता का अनुभव; जिसमें राग का अंश नहीं। क्योंकि पूर्ण दशा अभी मुक्ति, वह वीतराग मुक्ति है। इसलिए उसका साधन... आहाहा! उसके चरणकमल की सेवा भी वीतराग है। आहाहा! कितना भरा है! इनको शब्द कम पड़ते हैं। कहते-कहते क्या कहना है इन्हें? ऐसा भगवान अन्दर है। अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर, अतीन्द्रिय अनन्त-अनन्त वीर्य से भरपूर, अतीन्द्रिय अनन्त-अनन्त ज्ञान से भरपूर—ऐसी अनन्त-अनन्त शक्तियों का सागर। उसकी जो पूर्ण दशा मुक्ति... आहाहा! उसका जो साधन चरणकमल की सेवा, वह परमभक्ति है। आहाहा!

उस कारण से वह भव्य जीव भक्तिगुण द्वारा... ऐसी अपनी भक्ति गुण द्वारा **निज आत्मा को—कि जो निरावरण सहज ज्ञानगुणवाला होने से...** है। आहाहा! कैसा है आत्मा? कि जो निरावरण है। त्रिकाल निरावरण है। एक समय की पर्याय में आवरण का सम्बन्ध है। वस्तु में आवरण-फावरण है नहीं। आहाहा! **निरावरण सहज ज्ञानगुणवाला**

होने से... ज्ञान करना, होता है और करे तो हो - ऐसा नहीं। स्वाभाविक सहज गुण है ही। अनादि से सहज गुणस्वभाव से यह भरपूर ही है। आहाहा! यह ज्ञानगुण नया होता है या उत्पन्न होता है, इससे ज्ञात होता है - ऐसा नहीं है। स्वाभाविक त्रिकाल गुण भरपूर ही है। आहाहा!

स्वाभाविक निरावरण ज्ञानगुणवाला होने से.. आहाहा! कितने शब्द? **असहाय-गुणात्मक है...** असहायगुणवाला—जिसे किसी की सहायता नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय साधन; निश्चयरत्नत्रय साध्य - ऐसा नहीं है। आहाहा! शास्त्र में कथन आता है, व्यवहाररत्नत्रय पालन करो। वह तो निमित्तों के कथन का ज्ञान कराते हैं। वरना जिसके स्वरूप को साधने में किसी साधन की, बाहर की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! **निरावरण सहज ज्ञानगुणवाला होने से...** स्वाभाविक ज्ञानगुणवाला होने से। स्वाभाविक ज्ञानगुण, ज्ञान... ज्ञान... त्रिकाल ज्ञानस्वभाव ही जिसका है, वह उत्पन्न नहीं होता, उसका अभाव नहीं होता। आहाहा! जिसमें उत्पाद-व्यय है ही नहीं। आहाहा! ऐसा **असहायगुणात्मक है उसे—प्राप्त करता है।** ऐसा जीव ऐसे आत्मा को प्राप्त करता है। उसे निश्चयभक्ति कहा जाता है। आहाहा!

श्लोक-२२७

[अब इस १३६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(स्रग्धरा)

आत्मा ह्यात्मानमात्मन्यविचलितमहाशुद्धरत्नत्रयेऽस्मिन्,
नित्ये निर्मुक्ति-हेतौ निरुपम-सहज-ज्ञान-दृक्शीलरूपे।
सन्स्थाप्यानन्दभास्वन्निरतिशयगृहं चिच्चमत्कारभक्त्या,
प्राप्नोत्युच्चैरयं यं विगलितविपदं सिद्धिसीमन्तिनीशः ।।२२७।।

(वीरछन्द)

निश्चल महाशुद्ध रत्नत्रय युक्त नित्य शुद्धातम में।
मुक्ति हेतु दृग-ज्ञान-चरितमय निरुपम सहज निजातम में॥
वास्तव में सम्यक् प्रकार से स्थापित करके आतम को।
चेतन चमत्कार भक्ति से प्राप्त निरतिशय निज घर को॥
निजानन्द से शोभित जिसमें से आपद सब दूर हुईं।
यह आतम निज निलय निवासी मुक्ति वधू का हो स्वामी॥२२७॥

[श्लोकार्थः] इस अविचलित-महाशुद्ध-रत्नत्रयवाले, मुक्ति के हेतुभूत निरुपम-सहज-ज्ञानदर्शनचारित्ररूप, नित्य आत्मा में आत्मा को वास्तव में सम्यक् प्रकार से स्थापित करके, यह आत्मा चैतन्यचमत्कार की भक्ति द्वारा *निरतिशय घर को—कि जिसमें से विपदाएँ दूर हुई हैं तथा जो आनन्द से भव्य (शोभायमान) है उसे—अत्यन्त प्राप्त करता है अर्थात् सिद्धरूपी स्त्री का स्वामी होता है॥२२७॥

श्लोक - २२७ पर प्रवचन

२२७ कलश।

आत्मा ह्यात्मानमात्मन्यविचलितमहाशुद्धरत्नत्रयेऽस्मिन्,
नित्ये निर्मुक्ति-हेतौ निरुपम-सहज-ज्ञान-दृक्शीलरूपे।
सन्स्थाप्यानन्दभास्वन्निरतिशयगृहं चिच्चमत्कारभक्त्या,
प्राप्नोत्युच्चैरयं यं विगलितविपदं सिद्धिसीमन्तिनीशः ।।२२७।।

आहाहा! १३६ गाथा की टीका, उसका श्लोक।

श्लोकार्थ : इस अविचलित-महाशुद्ध-रत्नत्रयवाले,... ध्रुव ऐसा भगवान आत्मा त्रिकाली स्वाभाविक ही वस्तु है। किसी से हुई नहीं; नयी-सादिपना नहीं; अनादि से उसका स्वाभाव अविचलित-महाशुद्ध-रत्नत्रयवाला। ऐसे आत्मा की चलित न हो, ऐसी। निश्चय महाशुद्ध-रत्नत्रयवाला। यह मार्ग। आहाहा! ऐसा कहाँ था? सम्प्रदाय में सुना?

---

* *निरतिशय=जिससे कोई बढ़कर नहीं है ऐसे; अनुत्तम; श्रेष्ठ; अद्वितीय।*

सामायिक करो, प्रौषध करो,... करो, अमुक करो। ऐसे सब भाषण भी किये वापस। गप्प ही गप्प मारी हो। आहाहा! यह नहीं था। यह सुनने में आया नहीं। वह बेचारा लिखता है, वह है न चोपानिया? उसमें दो-तीन जगह लिखता है, भाई! इस मार्ग को कानजीस्वामी ने प्रगट किया है। यह मार्ग कहीं था नहीं। दो-तीन व्यक्तियों ने भाषण किया है। है इसमें। यह वस्तु थी नहीं। इन्होंने प्रगट किया है कि मार्ग यह है। आहाहा! इनके कारण क्रान्ति हुई है। तीन हजार लोग वहाँ एकत्रित हुए। तीन हजार लोग। हजार लोग तो बाहर से आये थे। कौन-सा गाँव?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ... तीन हजार लोग। बड़ी सभा। सब व्याख्यान दे। हुकमचन्दजी, बाबूभाई और ज्ञानचन्दजी। आहाहा!

इस अविचलित-महाशुद्ध-रत्नत्रयवाले,... शुद्ध-महाशुद्ध रत्नत्रय साधक लेना है। न चलित, ऐसे निश्चय से। आहाहा! इस आनन्द में जो ध्रुव है, उसे पकड़ा, उसका अनुभव हुआ, वह अब गिरनेवाला नहीं है। आहाहा! चलित होनेवाला नहीं है। पंचम काल के शिष्य को हम कहते हैं। आहाहा! पंचम काल के साधु, पंचम काल के शिष्य को कहते हैं, प्रभु! तू अविचलित महाशुद्ध रत्नत्रयवाला है। आहाहा! तेरा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र चलित नहीं होगा, गिरेगा नहीं, हीनता नहीं आयेगी। आहाहा!

इस... प्रत्यक्ष। 'इस' शब्द है न? **इस...** प्रत्यक्ष **अविचलित...** चलित न हो, ऐसा ध्रुव। त्रिकाली ध्रुव तो है, परन्तु पर्याय में ऐसी अप्रतिहत ध्रुवता आयी। जैसा ध्रुव है, वैसी अप्रतिहत परिणति आयी। आहाहा! यह पंचम काल की बात करते हैं। आहाहा! कितने ही कहते हैं कि पंचम काल में यह नहीं होता, अभी तो शुभयोग ही होता है। यह बहुत विपरीत बात करते हैं। मार्ग को बहुत विपरीत करते हैं। आहाहा!

यह प्रत्यक्ष **अविचलित-महाशुद्ध-रत्नत्रयवाले, मुक्ति के हेतुभूत...** आहाहा! मोक्ष का कारण, मोक्ष का हेतु। **निरुपम-सहज-ज्ञानदर्शनचारित्ररूप,...** जिसे कोई उपमा नहीं। आहाहा! ऐसे स्वाभाविक ज्ञान-दर्शन और चारित्र। इसमें ज्ञान पहले रखा। निरुपम-जिसे उपमा नहीं। आहाहा! स्वाभाविक-कुदरती चीज जो अनादि है, उसे उपमा क्या? उसे क्या कहना? आहाहा! जगत की चीज़ अनादि सहज है ही। आहाहा! है, उसकी बात

क्या करना ? कहते हैं। आहाहा! वस्तु है, वह अविचलित है। उसकी प्रतीति और ज्ञान अविचलित है। आहाहा! कितने ही कहते हैं न कि गिर जायेंगे तो ? अमुक होगा तो ? यह बात यहाँ रहने दे। आहाहा!

अविचलित-महाशुद्ध-रत्नत्रयवाले,... वापस महाशुद्ध रत्नत्रय। आहाहा! अन्तर शुद्ध चैतन्य ध्रुव भगवान की अन्तर में सन्मुख की प्रतीति-ज्ञान और रमणता, इस **महाशुद्ध-रत्नत्रयवाले, मुक्ति के हेतुभूत...** आहाहा! मुक्ति का यह कारण। **निरुपम-...** जिसकी उपमा नहीं। **सहज-ज्ञानदर्शनचारित्ररूप,...** आहाहा! सहज-स्वाभाविक ज्ञान-दर्शन और आनन्दरूप। चारित्र-आनन्द। आहाहा! भाषा थोड़ी पड़ती है! क्या कहना इसे ? ऐसा भगवान अन्दर तीन लोक का नाथ, अनन्त-अनन्त गुण का सागर; जिसके एक गुण की कीमत करते इन्द्र का इन्द्रासन धूल जैसा लगे। आहाहा! जिसके एक गुण की कीमत करते इन्द्र के बत्तीस लाख विमान का स्वामी इन्द्र... इन्द्र एकावतारी है। अभी सौधर्म देव का। एक भव में मोक्ष जानेवाला। उसका वैभव भी जहाँ सड़े हुए तिनके जैसा लगता है। ऐसे भगवान चैतन्य का एक गुण, ऐसे-ऐसे अनन्त गुण। आहाहा!

बाह्य चीज़ की अतिशयता, विशेषता, आश्चर्यता, विस्मयता कुछ देखकर वहाँ अटक गया है। यह वस्तु स्वयं पड़ी रही है। आहाहा! बाहर की चीज़ में कहीं न कहीं विस्मयता (लगती है)। ओहो! पैसा-बैसा पाँच करोड़, दस करोड़ होवे तो। ओहो! स्त्री कुछ रूपवान मिली हो तो वहाँ ओहो! पुत्र हुआ, उसे वहाँ ओहो! (हो जाता है)। यह सब होता है। कहीं न कहीं इसे आत्मा को छोड़कर दूसरी चीज़ में आश्चर्यता, विस्मयता, अधिकता... आहाहा! भासित होने से भगवान रह गया। यह अधिकता भासित होने से भगवान अन्दर रह गया। आहाहा! दुकान चलती हो। प्रतिदिन की दस-दस हजार की आमदनी हो और नौकर काम करते हों और धूमधाम चलती हो। ओहोहो! विस्मय-विस्मय आश्चर्य लगे, मानो इसे कुछ अधिकता भासती है। यह धूल की अधिकता भासित होने पर प्रभु की अधिकता भासित नहीं होती। आहाहा! शरीर की सुन्दरता, कोमलता की भी विस्मयता, आश्चर्यता में रुकने से प्रभु रह गया। आहाहा! कितनी भाषा रखी है!

मुक्ति के हेतुभूत निरुपम-... जिसे उपमा क्या देना ? बापू! आहाहा! उसके मार्ग को, हों! **सहज-ज्ञानदर्शनचारित्ररूप, नित्य आत्मा में आत्मा को...** आहाहा! **नित्य**

आत्मा में आत्मा को वास्तव में सम्यक् प्रकार से स्थापित करके,... आहाहा! वास्तव में सम्यक् प्रकार से स्थापित करके। अर्थात् कि आनन्द के धाम में ऐसा धाम-पड़ाव डाला है कि वह पड़ाव नहीं फिरेगा। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें आत्मा ने पड़ाव डाला, पड़ाव। आहाहा! ऐसा जो सहज पड़ाव, आहाहा! **सम्यक् प्रकार से स्थापित करके,...** आहाहा! सच्ची रीति से स्थापित करके। आहाहा! शास्त्र का वाँचन करके, धारणा करके - यह कुछ वस्तु नहीं है। शास्त्र का वाँचन किया और उसमें धारा कि ऐसा आत्मा। उसमें कुछ दम नहीं है। आहाहा! यह बाहर के शास्त्र के वाँचन और ज्ञान की महिमा का आश्चर्य (और) विस्मय जिसे लगता है, वह परमात्मा को खो बैठता है। आहाहा! वह निज परमात्मा को खो बैठता है। आहाहा!

नित्य आत्मा में आत्मा को वास्तव में... भाषा कितनी प्रयोग की है! वास्तव में सम्यक् प्रकार से स्थापित करके। वास्तव में और सम्यक् प्रकार से स्थापित करके। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का भरपूर सागर है। आहाहा! उसने जिसने वास्तव में सम्यक् प्रकार से आत्मा को स्थापित किया है। आहाहा! उसकी स्वभाव की पर्याय से उसे स्थापित किया। आहाहा! **यह आत्मा चैतन्यचमत्कार की भक्ति द्वारा...** ऐसा जीव इस प्रकार जब अन्दर सम्यक् प्रकार से स्थापित करे, तब वह आत्मा चैतन्य चमत्कार की भक्ति द्वारा। आहाहा! चैतन्य-चमत्कार की भक्ति द्वारा। आहाहा! जो अनन्त चमत्कारी गुणों से भरपूर चमत्कारी चीज़ वह है। उसके बिना दुनिया में कोई चीज़ चमत्कारी नहीं है। आहाहा! जिसके एक-एक ज्ञान में अनन्त-अनन्त जानना होने पर भी वह ज्ञान पूरा नहीं। आहाहा! तीन काल-तीन लोक जाने, इससे अनन्त गुण काल और लोक होता तो भी वह जान सके, ऐसी ताकतवाला वह तत्त्व है। आहाहा! तीन काल और तीन लोक, इससे भी अनन्तगुना यदि काल और लोक होता तो भी वह जान सके। क्यों? जिसका स्वभाव है, उसको कोई मर्यादा नहीं है। आहाहा! ऐसा जिसका चैतन्य-चमत्कार (स्वभाव)। आहाहा! उसकी भक्ति द्वारा। आहाहा! कितने शब्द प्रयोग किये हैं। आहाहा!

बाहर की महिमा के कारण पूरा गोता खा गया। आहाहा! दया, दान, भक्ति और सेवा और मण्डली का नायक हुआ, अमुक मण्डली बनाकर उसका नायक हुआ, सामने हुआ। मर गया है। आहाहा! अरे रे! भगवान बड़ा, जिसे कोई उपमा नहीं दी जा सकती,

जिसकी शक्ति का कोई पार नहीं, जिसकी शक्ति की गम्भीरता का पार नहीं। अनन्त शक्तियाँ तो है ही, परन्तु एक-एक शक्ति की गम्भीरता का पार नहीं, ऐसा सहज स्वरूप, ऐसा जो भगवान... आहाहा! उसकी भक्ति द्वारा, उसकी—चैतन्य-चमत्कार की भक्ति द्वारा **निरतिशय घर को—** आहाहा! यह निज घर। पाँच-दस लाख का मकान बनाया हो और वहाँ वास्तु करे... आहाहा! किसी बड़े कार्यवाहक को बुलावे, अमलदार को बुलावे-अधिकारी को बुलावे। आहाहा! मानो क्या करते हैं! यह तो निरतिशय घर। अपना घर। जिससे उत्कृष्ट कोई नहीं। आहाहा! इन्द्र के इन्द्रासन भी जिसके चमत्कार के समक्ष सड़ी हुई बिल्ली और सड़े हुए श्वान जैसे लगते हैं। आहाहा! ऐसा प्रभु का चैतन्य-चमत्कार अन्दर है। आहाहा!

यह बात ऐसी होगी? ऐसा लगे लोगों को कि... आहाहा! यह कुछ अधिक कहा जाता है? अधिक नहीं कहते। इसमें-कलश में है। एक शब्द पड़ा है। हम यह अधिक नहीं कहते। आहाहा! जैसा स्वरूप है, वैसा वर्णन करते हैं। आहाहा! और उस वर्णन में वह चीज़ तो छूती नहीं—आती नहीं। उसका वर्णन किसप्रकार करना? आहाहा! जिसके अक्षरों के वर्णन में वह चीज़ आती नहीं। जिसके अक्षर के वर्णन में वह चीज़ स्पर्शती नहीं। आहाहा! ऐसे चैतन्य-चमत्कार को वाणी द्वारा कितना कहना? कहते हैं। आहाहा!

ऐसा निजघर... आहाहा! देखा! कैसा? निरतिशय घर। आहाहा! निरतिशय अर्थात् उससे कोई ऊँचा नहीं, ऐसा अनुत्तम, अजोड़ घर। आहाहा! 'अब हम कबहुं न निज घर आये, परघर भ्रमत नाम अनेक धराये, अब हम कबहुं न निज घर आये।' आहाहा! अपना निज घर अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान से ठसाठस भरा हुआ, ऐसे अनन्त गुणों का सागर, वह निजघर। आहाहा! यहाँ तो जहाँ बाहर में दो-पाँच-दस लाख का बँगला बनावे, वहाँ मानो ओहोहो! दो-पाँच लाख की गिनती नहीं। उसके सामने अफ्रीका में जिस मकान में उतरे थे, वह पन्द्रह लाख का था और पचास-पचास लाख के मकान, करोड़-करोड़ के मकान। आहाहा! वे तो पत्थर-पत्थर है अकेले।

भगवान चैतन्य चमत्कार से भरपूर ऐसे निज घर को **कि जिसमें से विपदाएँ दूर हुई हैं...** आहाहा! क्या कहते हैं? कैसा है निजघर अन्दर? जिसमें इतनी सम्पदा पड़ी है कि विपदा तो नाश हो गयी है। आहाहा! जहाँ विपदा की गन्ध नहीं है, ऐसा भगवान अन्दर

विराजमान है। आहाहा! यह बाहर के चमत्कार देखे। आहाहा! उसमें और दो-पाँच हजार की आमदनी प्रतिदिन हो। आहाहा! पहले तो रोकड़ा रुपये थे। भर जाता था न वह? क्या कहलाता है वह? बडखुं। लकड़ी का भर जाता था पूरा। ओहोहो! आज तो बहुत आय हुई। चार सौ-पाँच सौ-पाँच सौ, हजार, दो हजार नगद आये हैं अन्दर। आहाहा! प्रभु! यह सब बातें... आहाहा! ये विष्ठा की बातों जैसी बातें हैं। आहाहा!

निज घर निरतिशय **कि जिसमें से विपदाएँ दूर हुई हैं...** आहाहा! जिसमें विपदा की गन्ध नहीं। सम्पदा का सागर है और विपदा का अभाव है। आहाहा! अनन्त-अनन्त सम्पदा से भरपूर और विपदा की जिसमें गन्ध नहीं। आहाहा! ऐसा आत्मा सुना न हो कभी। आहाहा! वह शब्द में तो कितना आवे? पीछे जो मस्तिष्क में भाव है, वह भाव कहीं शब्द में पूरा आवे नहीं। आहाहा! ऐसा जो निज घर **जिसमें से विपदाएँ दूर हुई हैं...** आहाहा!

तथा जो आनन्द से भव्य (शोभायमान) है... आहाहा! सम्पदा ऐसी। अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भगवान है। आहाहा! उसका भण्डार.. भण्डार। पैसे से भरा हुआ होवे न, तो वह गिनती का होता है। नोट होवे तो पाँच-दस लाख, पच्चीस लाख कदाचित् हो। आहाहा! यह तो अनन्त शक्ति और आपदा से रहित, सम्पदा से शोभित। आहाहा! निज सम्पदा से शोभित ऐसा भगवान अन्दर (विराजता है)। आहाहा! यह है या नहीं वहाँ मनसुख? यह पुस्तक है या नहीं वहाँ? ठीक! आहाहा!

जिसमें से विपदाएँ दूर हुई हैं तथा जो आनन्द से भव्य (शोभायमान) है... आनन्द से शोभित है। भगवान अन्दर तो अतीन्द्रिय आनन्द से शोभित है। इन्द्रिय का सुख, वह जहर का प्याला है। आहाहा! विषय की वासनायें तो जहर का प्याला है। वे भगवान में तो है नहीं। आपदा से तो रहित है। ऐसी जो आपदायें, उनसे तो प्रभु अन्दर रहित है। आहाहा! ऐसा कैसा धर्म! कुछ करने को कहते नहीं। परन्तु यह करने को नहीं कहते? ऐसा है, ऐसा मान, यह करने का नहीं है? करने का कुछ कूदने का है कहीं? सामायिक की, प्रौषध किये, प्रतिक्रमण किये, दान दिया, धूल की। आहाहा!

निजघर तो जिसे आनन्द से शोभित है। आहाहा! मुनिराज को चैतन्य चमत्कार का वर्णन करते हुए शब्द कम पड़ते हैं। आहाहा! ऐसा यह भगवान आत्मा **उसे—अत्यन्त प्राप्त करता है...** वह अन्तर की भक्ति करनेवाला। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसकी

भक्ति श्रद्धा-ज्ञान-रमणता करनेवाला, ऐसे आत्मा को वह अत्यन्त प्राप्त करता है। प्राप्त करता है - ऐसा भी नहीं लिया। अत्यन्त प्राप्त करता है। वह प्राप्त करता है, यह किया, यह किया, अब फिरने का नहीं है, कहते हैं। आहाहा! मुनिराज के हृदय की शैली-धारा तो देखो! कहते हैं कि वह प्राप्त हुआ, वह अत्यन्त प्राप्त करता है। आहाहा! अत्यन्त प्राप्त हुआ है। उसका अब अन्त ही नहीं, छोर ही नहीं। ऐसा भगवान चैतन्य चमत्कार से अपने गुण से भरपूर, उसके श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति की वीतरागता से प्राप्त होता है। व्यवहार से प्राप्त होता है - ऐसा नहीं कहा। यह व्यवहार दया, दान, व्रत करें और भक्ति करें, पूजा करें तो उससे प्राप्त होता है - ऐसा नहीं कहा। आहाहा!

उसे—अत्यन्त प्राप्त करता है अर्थात् सिद्धिरूपी स्त्री का स्वामी होता है। मुक्ति अर्थात् पूर्ण आनन्द की दशा। आत्मा का पूर्ण आनन्द का लाभ, उसका नाम मुक्ति। आत्मा में आनन्दस्वरूप जो भरा है, उसका पर्याय में पूर्ण आनन्द का लाभ, उसका नाम मुक्ति। आहाहा! भरा हुआ तो है ही। पूर्ण आनन्द से भरपूर है। आहाहा! उस **सिद्धिरूपी स्त्री का स्वामी होता है।** आहाहा! मुक्ति परिणति अर्थात् पर्याय, मुक्तिरूपी जो पर्याय, उसका वह स्वामी होता है। आहाहा! वह संसार और राग का स्वामी (पना) छोड़ देता है। सब विपदाओं का नाश हो गया है और अकेली सम्पदा प्रगट हुई है, उसका वह स्वामी है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)